International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 16-01-2026, Accepted: 15-02-2026, Published: 02-03-2026
Volume 8, Issue 1, 2026, Page No. 22-24

हिन्दी की प्रमुख दलित आत्मकथाएं

डॉ. स्मृति उरांव
शोधार्थी (हिंदी), सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़, भारत

सारांश
हिन्दी दलित साहित्य में आत्मकथा एक अत्यंत सशक्त विधा है। जो सदियों के शोषण, अपमान और संघर्ष की मार्मिक दस्तान बयां करती है। प्रमुख आत्मकथाओं में ओमप्रकाश वाल्मिकि की झूलन मोहनदास नैमिराय की अपने–अपने पिंजरे और तुलसीदास की मुर्द दिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दलित साहित्य दलित समाज के प्रश्नों को अपनी रचनाओं में स्थान देता है। आत्मकथा दलित साहित्य के प्रमुख विधा है। उपरोक्त सभी दलित समाज की समस्याओं को भरपूर स्वर मिला है। अभिव्यक्ति के स्तर पर जो तीक्ष्णता और निरक्तता इन रचनाओं में दिखाई देता है। वह अन्यत्र दुर्लभ है। समता, स्थापना और नए समाज की स्थापना नए समाज की निर्माण और जाति आधारित भेदभाव का समूल नाश जैसे लक्ष्यों को संबोधित करने की दृष्टि से ये आत्मकथाएं सफल दिखाई देती है। इनमें मनुष्य की अवमानना के अनेक रूपों को देखा जा सकता है। दलित आत्मकथाओं में अभिव्यक्त मनुष्य का दर्द व्यक्तिगत पीड़ा एहसास में आरंभ होकर अंतः एकताबद्ध इकाई के रूप में परिणत हो जाता है। लेखक ने निजी अनुभव अभिव्यक्ति के स्तर से उपर उठकर दलित आंदोलन के अस्त्र बनते दिखाई देते हैं।

मूल शब्दः अनुभवों का चित्रण, असमानता, वंचित वर्ग, लेखन की प्रवृत्तियां, स्वानुभूति, परिवर्तन और प्रतिरोध, सामाजिक शोषण, सांस्कृतिक चेतना आत्मकथा का स्वरूप, पिछड़ा अस्मिता, दलित, मुर्दाहिया, जूठन, अपशगून

प्रस्तावना

हिन्दी दलित साहित्य की प्रमुख आत्मकथाए

1. अपने–अपने पिंजरे

दलित लेखक मोहनदास नैनिसराय की आत्मकथा अपने–अपने पिंजरे सन् 1995 में प्रकाशित हुई इसका दूसरा भाग सन् 2000 में प्रकाशित हुआ। तीसरा भाग रंग कितने संग मेरे नाम से 2019 में प्रकाशित हुआ है। इस आत्मकथा को हिन्दी की पहली आत्मकथा होने का सम्मान मिला है। आत्मकथा का आरंभ मेरठ शहर के परिचय से किया है। शहर बहुत बड़ा न था। पर बड़ी थी, उसकी बात, संस्कृति और परंपरा बड़ा था उसका इतिहास, समय–समय पर जिसका लोग गौरवगान किया करते हैं। नेताओं के भाषणों में अक्सर इसी शहर की बखानगी होती थी। इसी मेरठ शहर से 1857 की पहली लड़ाई का आरंभ हुआ था। बचपन में ही लेखक की मां की मृत्यू हो गई थी। ताई मां ने नैनिसराय को गोद ले लिया और उनका पालन–पोषण किया। लेखक जहां रहते थे उस जगह का नाम चमार बस्ती था। बाद में फिर चमार दरवज्जा नाम हुआ। जिसमें चमार लोग रहते थे। बस्ती के किनारे सवर्णों का एक मंदिर था। दलितों को मंदिर में जाने की मनाई थी। शाम को आरती होने के बाद पुजारी मंदिर के आंगन बच्चों को प्रसाद बांटता था। पुजारी दलित बच्चों से छुआछुत रखता था। प्रसाद देते समय प्रसाद अगर गिर जाता तो दलित बच्चे ही उठाते नहीं उठाते तो अगले दिन प्रसाद नहीं मिलता था। एक दिन प्रसाद देते समय नैनिसराय जी का उंगली पुजारी जी से टकरा जाता है तो पुजारी उसे गाली देता है–तु चमार का है न सबकुछ भ्रष्ट कर दिया कितनी बार कहा तुम ढेरों से प्रसाद लेना बंद कर दिया और थूक कर वहां से आ गया। इस स्थिति को देखने से यह लगता है कि नैनिसराय जी में आक्रोश की भावना उठी उनके इस व्यवहार से सवर्णों के इस भेदभाव से उनको भगवान से नफरत होने लगी।

लेखक ने गंगा में मेले की बात कही है। दलित बस्ती के लोग कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर गंगा स्नान करने जाते हैं। वहां भी लोगों के द्वारा उनके साथ भेदभाव किया जाता है और जातिगत अलग–अलग तम्बू बना होता है। दलित लोगों को सवर्णों लोग जानवरों की तरह व्यवहार करते हैं। एक दिन लेखक अपनी बड़ी बहन के ससुराल जाते हैं रास्ते में उनको प्यास लगी तो उन लोगों को पानी नहीं दिया गया और भैंस के लिए पानी रखा था उसे लेखक को पीना पड़ा।

आत्मकथा का दूसरा भाग लेखक की बम्बई से घर लौटने की घटना से होता है। एक सप्ताह के बाद नैनिशराय बंबई से घर आते हैं। लेखक के आने से ताई मां बहुत खुश हो जाती है। नैनिशराय का एडमिशन देवनागरी इंटर कॉलेज में हो गया था। इनके इतिहास के अध्यापक हरबंससिंह का व्यवहार लेखक के प्रति अच्छा था।

उनके अलावा कोई अध्यापक घर के बारे में नहीं पूछते थे। शहर की अन्य दलित बस्ती की औरतों की तरह लेखक की बस्ती की औरतें जंगल जाती थी। उन्हें अकेला पाकर सवर्ण व्यक्ति उनके शरीर को नोचने के लिए तैयार बैठे रहते थे। उनमें से कुछ बच जाती थी। तथा कुछ अपनी इज्जत गंवाए बिना भाग आती थी।

कह सकते हैं कि अपने–अपने पिंजरे भाग 1, 2 नैनिशराय जी की आत्मकथा ही नहीं बल्कि अपने दलित समाज की व्यथा, पीड़ा, घृणा, यातना, घुटन और जीवन संघर्ष की कथा है। यह आत्मकथा यथार्थवाद पर केन्द्रित रही है। इसीलिए कहा जा सकता है। कि नैनिशराय जी ने आत्मकथा के क्षेत्र में एक नई दृष्टि दी है।

2. जूठन

ओमप्रकाश वाल्मिकि की जूठन आत्मकथा हिन्दी की प्रमुख दलित आत्मकथा है। जूठन का प्रथम भाग 1997 में प्रकाशित हुआ है। इसमें दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मिकि और और मेहतर समाज का भोगा हुआ यथार्थ जीवन अभिव्यक्त हुआ है। ओमप्रकाश जी का जन्म 1950 ई. में उत्तरप्रदेश के मुजफ्फर नगर के बरला नामक गांव में हुआ है। उनकी शिक्षा एम.ए. हिन्दी साहित्य हुई है। वे डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के विचारों को आदर्श मानते थे। वाल्मिकि जी के जूठन आत्मकथा में लेखक व्यक्तिगत जीवन के वास्तविक अनुभव को चित्रित किया है। जिसके माध्यम से दलित जीवन की यथार्थता प्रकट हुई है। प्रस्तुत उपन्यास में दलित जीवन की यातना, पीड़ा देश को देखा जा सकता है। जूठन नाम से ही पता चलता है कि लेखक के जीवन में जूठन से संबंधित

कुछ घटनाएं घटी होंगी। जूठन का अर्थ है। जूठा अर्थात् किसी द्वारा खाना आधा खाकर छोड़ा हुआ खाना या जूठा करके भोजन को छोड़ देना।

आत्मकथा के प्रारंभ में ही दलित समाज जीवन की व्यवस्था को दर्शाया गया है। बरला गांव के डब्बोवाले जोहड़ी के वर्णन। वाल्मिकि जी के घर के पीछे गांव का खुला शौचालय है। दलितों को गांव से बाहर अत्यंत गंदे परिवश में रहना पड़ता है। उनके घर कच्ची–मिट्टी के और टूटे–फूटे है। ओमप्रकाश के शब्दों में चारो तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध की मिनट भर में सांस घूट जाए। तंग गलियों में घूमते सुअर, नंग–धड़ंग बच्चे, कुत्ते रोजमर्रा के झगड़े बस यह था वातावरण जिसमें बचपन बिता। इस महौल में यदि वर्ण व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था कहने वालों को दो–चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी। गांव में दलितों को उनके नाम से नहीं जाति के नाम से पहचानते हैं। वाल्मिकि जी को और उनके जाति वालों को सवर्ण लोग ओ चुहड़े बोलते थे। जूठन आत्मकथा में ओमप्रकाश जी अपने तथा दलित समाज के व्यक्तिगत जीवन के वास्तविक अनुभव चित्रित किये है। वाल्मिकि जी के माता–पिता इनको पढ़ा–लिखाकर आगे बढ़ने को प्रेरित करते हैं। परन्तु जातिगत व्यवस्था के कारण ओमप्रकाश जी के पढ़ाई में अनेक बाधाएं आई कहीं पैसों की तंगी कहीं जातिगत भेदभाव से जूझते हुए वाल्मिकि जी जैसे–तैसे अपने आगे की पढ़ाई करके शहर गये वहां भी उनको जातिगत भेदभावों का सामना करना पड़ा।

प्रस्तुत आत्मकथा में दलितों की अपेक्षा और अपमान करने वाली प्रथा–परंपराओं के खिलाफ दलित समाज द्वारा विद्रोह की घटनाओं का भी जीवंत चित्रण हुआ है। वाल्मिकि जी की जूठन आत्मकथा में ऐसे अनेकों प्रसंग एवं घटनाएं मिलती है जो ब्रम्हवादी पोषकों के जातिवादी चरित्रों, रिति–रिवाजों, परंपराओं तथा प्रथाओं के खिलाफ बगावत का संकेत देती है। आत्मकथा में सवर्ण के परिवारों में शादी ब्याह के समय कई तक दलितों को साफ–सफाई के काम करने पड़ते हैं। आत्मकथा में अभिव्यक्त सुखदेव सिंह त्यागी की बेटी के विवाह के पहले दस–बारह दिन वाल्मिकि जी की मां और पिताजी साफ–सफाई का काम करते हैं। इतने दिनों की सफाई के बदले उन्हें बारात के जूठन ही नसीब होती थी। गरीबी के कारण दलितों को सवर्णों के घर की जूठन खानी पड़ती थी। लेखक कहते हैं दिनभर थककर हमारे पसीनों की कीमत मात्र जूठन फिर भी किसी को कोई शिकायत नहीं, कोई शर्मींदगी नहीं, कोई पश्चाताप नहीं। सुखदेव त्यागी की बेटे के विवाह के दिन लेखक की मां बारात में बची–खुंची जूठन एक टोकरे में ईकट्ठा करती है। वह सुखदेव सिंह त्यागी से अपने बच्चों के लिए पत्तल में खाना मांगती है। तब सुखदेव सिंह त्यागी लेखक की मां का अपमान करते हुए कहता है– टोकरा भर तो जूठन ले जा रही है उपर से जाकतो के लिए खाणा मांग री है? अपणी औकात में रह चूहड़ी। उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन। लेखक की स्वाभिमानी मां उसी समय टोकरे में जमा की हुई सारी जूठन वहीं बिखेर देती है। सुखदेव सिंह त्यागी को करारा उत्तर देते हुए कहती है इसे उठा के अपने घर धर ले। कल तड़के बरातियों को नाश्ते में खिला देना। इस घटना के बाद वाल्मिकि जी के परिवार में जूठन की प्रथा बंद होती है।

जूठन आत्मकथा में आत्मकथाकार वाल्मिकि अपनी स्वानुभूति व्यक्त करते हुए दलित समाज की यथार्थ स्थिति को उजागर किया है। प्रस्तुत आत्मकथा में केवल ओमप्रकाश वाल्मिकि का नीजी जीवन नहीं हुआ है। बलिक दलित समाज के भोगे हुए यथार्थ जीवन अनुभव व्यक्त हुआ है। दलित जीवन वेदना, पीड़ा और आक्रोश की तीव्र अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त जातियता, धर्माच्छता रूढ़ी, प्रथा–परंपरा आदि के कारण दलितों को अनेक कष्ट और यातनाएं सहनी पड़ती है। इसे वाल्मिकि जी ने विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से उजागर किया है।

3. मुर्दाहिया

मुर्दाहिया डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा है जिसका प्रकाशन 2010 में हुआ है। तुलसीराम की आत्मकथा का दूसरा भाग मणिकर्णिका शीर्षक से 2014 में आया था। इस आत्मकथा में जीवन कथा की सच्ची और अनुभूतिमय प्रसूति हुई है। इसमें लेखक की बाल्यवस्था से महाविद्यालय जीवन तक के संघर्षों का यथार्थ चित्रण है। लेखक के जीवन की एक–एक घटनाओं से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर अनेक–अनेक सवाल खड़े हो जाते हैं। लेखक का गरीब होना, दलित होना, गांव की दलित बस्ती में पैदा होना, जन्म के बाद चेचक की मार से काना बनना और आरंभिक शैक्षिक जीवन में उपेक्ष का शिकार होना। अनेक ऐसे मानव जनित अभिशाप है जो लेखक को जीवन पर्यंत प्रभावित करते हैं। इस आत्मकथा में वंदना, संघर्ष, प्रतिरोध घात–प्रतिघात विद्रोह एवं जीवन को जीने की उत्कट इच्छा से अभिप्रेषत होकर लेखक अपने जीवन को सफल बनाने में समर्थ हो पाता है। लेखक ने इस आत्मकथा को सात उपशीर्षक में विभाजित किया है। जिसमें अपने जीवन से जुड़े सभी पहलुओं का वर्णन किया है। प्रथम उपशीर्षक में भूतही पारिवारिक पृष्ठभूमि का चित्रण है। गांव व घर के सदस्य का अनपढ़ होने के कारण अंधविश्वास इतना अधिक था कि लेखक के दादा के खेत में किसी व्यक्ति द्वारा मार दिया गया था। किंतु लेखक के परिवार व गांव के सभी लोग समझते हैं कि उनको भूत ने मार डाला। तीन वर्ष की अवस्था में लेखक पर चेचक का प्रकोप इतना गहरा हुआ कि उसकी दायीं आंख की रोशनी हमेशा के लिए विलुप्त हो गई और वे सभी के लिए अपशगुन बन गए। इनके साथ जंगू पांडे को भी अपशगून का रूप माना जाता था। इनको घर एवं गांव वाले कनवा कहकर पुकारते थे।

लेखक ने मुर्दाहिदया आत्मकथा की उपशीर्षक द्वितीय को मुर्दाहिया तथा स्कूली जीवन नाम से दिया जिसमें अपने स्कूल जीवन की चर्चा की है। लेखक के पिता तेरसी ने अंधविश्वासी होने के कारण अम्बिका पांडे से स्कूल जाने का शुभ दिन पूछकर उसका स्कूल में दाखिला कराया था। स्कूल में भी उसे अपमानित किया जाता था। बच्चे उसे चमारकिट कहकर पुकारते थे। शिक्षा क्षेत्र में भ्रष्टता का स्वरूप लेखक को देखने को मिला।

आत्मकथा का तृतीय उपशीर्षक अकाल में अंधविश्वास लेखक की कक्षा स्कूल में कमरे न होने के कारण पेड़ के नीचे लगा करती थी जिससे वह दुःखी होता था। किंतु वह बड़ा हुआ तो उसे बहुत संतोष हुआ। वर्षों बाद यह समझकर बड़ी संतुष्टी की अनुभूति हुई की पूरा का पूरा भारतीय दर्शन ही पेड़ों के नीचे शिक्षा मिली थी। अकाल से जनजीवन में अभाव की ग्रस्तता को भी लेखक ने वर्णन किया है। पानी की समस्या को भी विशेष रूप से दर्शाया है। चौथा उपशीर्षक मुर्दाहिया के गिद्ध तथा लोकजीवन में लेखक सात मील दूर बबुरा धनदुंवा नामक गांव की पांचवी के पेपर के लिए पैदल जाता था। अकाल के कारण उसे कम भोजन मिलता था। इस उपशीर्षक में लेखक मुर्दाहिया के लोकजीवन के विभिन्न पहलुओं को उठाया है। चले बुद्ध की राह आत्मकथा का छठा उपशीर्षक है इस उपशीर्षक में वीर रस के कवि श्याम नारायण पाण्डेय तथा सखी सम्प्रदाय का संक्षेप में वर्णन किया गया है। लेखन राहूल सांस्कृत्यापन व गौतम बुद्ध के जीवन से बहुत अधिक प्रभावित हुआ। आत्मकथा के सातवें उपशीर्षक में लेखक ने आजमगढ़ के महाविद्यालय में पढ़ाई व छात्रावास में दलित छात्रों के प्रवेश में होने वाली अड़चनों पर प्रकाश डाला है। लेखक डी.ए.वी., कॉलेज में आर.एस.एस. द्वारा किए जाने वाले जातिवाद का वर्णन बेबाकी व स्पष्ट किया है।

मुर्दाहिया आत्मकथा दलित एवं ग्रामीण जीवन का दस्तावेज है इस आत्मकथा में लेखक के मुर्दाहिया से लेकर दिल्ली तक की संघर्ष गाथा है। अंधविश्वास, अशिक्षित, जादू टोना स्पृश्यता ठेठ ग्रामीण व कृषक जीवन से निकलकर शिक्षा के संबल पर महात्मा बुद्ध एवं डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जीवन से प्रेरित होकर अनेक व्यवधानों की जंजीरों को तोड़ता हुआ दिल्ली के प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थानों जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय दिल्ली में प्रोफेसर के पद तक की यात्रा करता है।

निष्कर्ष

दलित आत्मकथाएं दलित लेखकों के अदम्य जीवन संघर्ष के साथ आगे बढ़ने का संदेश देती है। क्योंकि दलित आत्मकथाकार बताना चाहते हैं कि जो नरकीय और दासतापूर्ण जीवन हमको मिला है उसमें किसी व्यक्ति विशेष का अपराध नहीं है। इसलिए दलित आत्मकथाएं हमेशा परिवर्तन की मांग करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अपने–अपने पिंजरे, भाग–1 मोहनदास नैनिशराय, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
2. जूठन ओमप्रकाश वाल्मिकि राधाकृष्ण प्रकाशन
3. मुर्दाहिया डॉ. तुलसीराम, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली
4. चर्चित हिन्दी की दलित आत्कथाएं, डॉ. ललिता कौशल
5. दलित साहित्य की अवधारणा डॉ. तुलसीराम नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग।